ISSN 2278-8808 IMPACT FACTOR: 1.38
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

भारतीय संगीत के प्रमुख तंत्री वाद्यों का भेद एवं वर्गीकरण

डा. गौरी

(असिस्टेंट प्रोफैसर, संगीत) बी. एल. एम गर्ल्ज़ कालेज, नवांशहर सार

यह लेख भारतीय वाद्यों के वर्गीकरण पर केंद्रित है । संगीत की कोई भी चर्चा वाद्यों और उनके वर्गीकरण की बात किये बिना अधूरी है । वैदिक काल से लेकर भरत तक के समय में वाद्यों का कोई निश्चित वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है।सर्वप्रथम भरत ने ही चार प्रकार के वाद्यों – तत्, अवनद्ध, सुषिर तथा घन–का उल्लेख अपने ग्रंथ नाट्य शास्त्र में किया है। परंपरागत रूप से तीन प्रकार के वर्गीकरण प्रचलित हैं : नाद आधारित वर्गीकरण, वादन माध्यम आधारित वर्गीकरण एवं वादन क्रिया आधारित वर्गीकरण । प्राचीन वैदिक युग में तंत्री वाद्यों में वीणा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था । तत्कालीन भारत में कई और तंत्री वाद्य प्रयोग किए जाते थे जिनमें से आजकल कुछ ही प्रचलन में हैं। आजकल प्रचलित अधिकांश तंत्री वाद्य इन्हीं प्राचीन वाद्यों का बदला अथवा विकसित रूप हैं। सितार, सरोद, सुरबहार, स्वरमंडल, रुद्रवीणा इत्यादि प्राचीन वीणाओं के संशोधित रूप ही हैं । भारतीय संगीत में सारिका युक्त तंत्री वाद्यों में सितार का स्थान आज के युग में शीर्षस्थ है । अपने व्यापक प्रचार और प्रसार क्षेत्र के कारण यह वाद्य इतना लोकप्रिय है ।

भूमिका

गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीतमुच्चते[1]

संगीत की यही सर्वमान्य परिभाषा है। गीत वाद्य तथा नृत्य का सामुच्चय ही संगीत है।संगीत अपने आप में संपूर्ण वांगमय है। भारतीय संगीत की कोई भी चर्चा वाद्यों के वर्गीकरण की बात किये बिना अधूरी है , अत: यह लेख वाद्यों के वर्गीकरण पर केंद्रित है ।

"वाद्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'वादनीय' अथवा बजाने योग्य 'यंत्र विशेष'। यह शब्द 'वद' धातु से निष्पन्न होता है, जो व्यत्कायांवाचि या स्पष्ट उच्चारण करने के अर्थ में व्यवहृत होती है।"[2]

संगीतात्मक ध्वनि तथा गीत को प्रकट करने के उपकरण को वाद्य कहा जाता है। वाद्य दृष्टव्य है तथा इससे उत्पन्न नाद श्रव्य।

"वाद्य वद् (कहना) + णिच + यत बाजा बजाना"[3] वदतीति वाद्यम अर्थात जिस भी वाद्य यंत्र को बजाने से जो ध्वनि हमें सुनाई देती है वही वाद्य वाद्य शब्द को सार्थक करता है।

प्राचीन ग्रंथों में वाद्यों की उत्पत्ति का वर्णन किसी न किसी देवी देवता से संबधित रहा है। भारतीय संगीत विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों से भरपूर है । शुभंकर रचित संगीत दामोदर में भारतीय संगीत में वाद्यों को तत् अवनद्ध, सुषिर तथा घन इन चार वर्गों में बांटा गया है ।

ततं वाद्यतु देवाणां , गांधर्वांणं च शौषिरम ।
आनंद्ध राक्षसानातु, किन्नराणांघनं विदु:।
निजावतारे गोबिन्द: सर्वंभेवानयत् क्षितो [4]

अर्थात तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर गांधर्वों से, अवनद्ध वाद्य राक्षसों से तथा घन वाद्य किन्नरों से संबधित थे, जब श्रीकृष्ण ने अवतार लिया तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आये।

वाद्यों का भेद एवं वर्गीकरण

वैदिक काल से लेकर भरत तक के समय में वाद्यों का कोई निश्चित वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है। सर्वंप्रथम भरत ने ही चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख अपने ग्रंथ नाट्य शास्त्र में किया है।

नाद के दो भेद आहत तथा अनाहत हैं। आहत नाद जिसे हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते हैं। निम्नलिखित आधार पर वाद्यों का वर्गीकरण किया गया है।

१. **नाद आधारित वर्गीकरण**– विभिन्न वस्तुओं से ध्वनि का उत्पादन भिन्न भिन्न होता है ।अत: इसी आधार पर वाद्यों के भी कई भेद व उपभेद किए गए हैं । तार पर नख प्रहार से उत्पन्न ध्वनि को नखज, फूंक इत्यादि के द्वारा वायु से उत्पन्न ध्वनि को वायुज, मढी हुई वस्तुओं पर आघात करने से चर्मंज, लोहे आदि धातु से बनी वस्तुओं

को आपस में टकराने से पैदा होने वाली ध्वनि को लोहज और मानव कंठ से निकलने वाली ध्वनि को शरीरज कहा जाता था । इन पांच प्रकार की ध्वनियों के आधार पर वाद्यों के पांच वर्ग नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज माने गए हैं जिन्हें पंचमहावाद्य कहा गया है।

२. **वादन माध्यम आधारित वर्गीकरण :** वादन के माध्यम के आधार पर वाद्यों के चार वर्ग माने गए हैं- तत् अवनद्ध, सुषिर तथा घन । तत् वाद्य तंत्री से युक्त होते हैं, जैसे कि वीणा , तंबूरा, सितार और सारंगी । इन्हें गज या उंगलियों से बजाया जाता है । अवनद्ध वाद्य चमड़े से मढे होते है और हाथ या दण्ड से आघात करने से बजते हैं जैसे कि डमरू डफ मृदंग, तबला, ढोलक इत्यादि । छिद्रों में सांस फूंक कर बजाए जाने वाले वाद्यों को सुषिर वाद्य कहते हैं जैसे कि वेणु, वंशी और शहनाई । जो वाद्य धातु या काष्ठ से बनते हैं और जिनमें ध्वनि परस्पर आघात से उत्पन्न होती है घन वाद्य कहलाते हैं । उदाहरण के तौर पर झांझ, मंजीरा, करताल, घंटा, घुंघरू, चिमटा, जलतरंग, पट्टीतरंग ।

३. **वादन क्रिया आधारित वर्गीकरण**

क. तत् वाद्य- वादन क्रिया के आधार पर तत् वाद्यों के चार भेद हैं:-

- उंगलियों से छेड़ कर बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि तानपूरा, स्वरमंडल
- कोण, मिजराब आदि से बजाए जाने वाले वाद्य, जैसे सितार , रुद्रवीणा, सरोद, विचित्रवीणा
- गज को तारों पर रगड़ कर बजाए जाने वाले वाद्य, जैसे सारंगी, दिलरुबा, इसराज
- डंडी के प्रहार से बजाए जाने वाले वाद्य, जैसे संतूर

ख. अवनद्ध वाद्य - अवनद्ध वाद्य दोनों हाथों के प्रयोग से बजाए जाते हैं जैसे कि पखावज, मृदंगम, तबला, ढोलक इत्यादि। ये वाद्य चार प्रकार के होते हैं

- एक हाथ की उंगली से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि हुड़क, खंजरी आदि
- शंकु से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि नगाड़ा, धौंसा आदि
- एक ओर हाथ से तथा दूसरी ओर डंडी से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि ढोल, पटहा आदि

- घुंडी के आघात से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि डमरू

ग. सुषिर वाद्य - वादन क्रिया के आधार पर सुषिर वाद्यों के दो भेद हैं:-

- मुंह से फूंक कर बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि वंशी, मुरली, पुंगी और शहनाई आदि
- किसी अन्य तकनीक द्वारा वायु उत्पन्न करके बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि हारमोनियम, स्वरपेटी आदि

घ. घन वाद्य- वादन क्रिया के आधार पर घन वाद्यों के तीन भेद हैं:-

- एक समान दो भागों को परस्पर टकरा कर बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि झांझ, मंजीरा, करताल आदि
- लकड़ी की डंडी अथवा किसी अन्य वस्तु से आघात कर बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि जलतरंग, पट्टीतरंग, काष्ठतरंग आदि
- किसी अन्य माध्यम से आघात कर बजाए जाने वाले वाद्य जैसे कि घंटा, घड़ियाल आदि

संगीत पद्धति के इतिहास या क्रमिक विकास के अध्ययन में वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का समावेश है । गायन में स्वर और लय के साथ काव्य भी सम्मिलित होता है किन्तु वाद्य वादन में स्वर और लय का ही प्रयोग होता है । वाद्य वादन में संगीत के सम्पूर्ण तत्व समाहित रहते हैं इसलिए वाद्य संगीत सांगीतिक अभिव्यंजना का अधिक विस्तार करने में समर्थ होता है और विशेषकर तंत्री वाद्यों में श्रोताओं को कलात्मक रसास्वादन करवा उन्हें मंत्रमुग्ध कर डालने की अपार क्षमता होती है ।प्रत्यक्षत: तंत्री वाद्यों का भारतीय वाद्य संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्राचीन काल में वैदिक युग में तंत्री वाद्यों में वीणा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था । हिरण्यकेशी सूत्र में विभिन्न वीणा प्रकारों का वर्णन किया गया है जिनमें ताल्लुकवीणा, काण्डवीणा, अलाबुवीणा, कपिशीर्षवीणा कर्करीवीणा, वाणवीणा गर्गरवीणा इत्यादि प्रमुख हैं । विकसित तंत्री वाद्य युक्त वीणा, वल्लकी एवं विपंची प्राचीन काल से प्रचलित हैं । रामायण के अयोध्या कांड में इन तीनों का उल्लेख मिलता है । महाभारत काल में भी वीणा वाद्य के प्रकारों , जैसे कि वल्लकी वीणा एवं विपंची वीणा, का वर्णन मिलता है । पौराणिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी वीणा के विभिन्न प्रकारों- चित्र, सुघोषा, नन्दिघोषा, परवायुवी अथवा

परवादिनी वीणा का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है ।भरत से शारंगदेव तक के काल में चित्र वीणा और विपंची वीणा के अतिरिक्त कच्छपी वीणा एवं घोषिका वीणा का जिक्र मिलता है । मतंग को किन्नरी वीणा का अविष्कारक कहा जाता है । वाद्यों की इस परंपरा में विदेशी संस्कृति के संपर्क से कुछ नए वाद्यों का आगमन हुआ जिनमें तंबूरा, सितार, सरोद इत्यादि नखज तंत्री वाद्यों के साथ-साथ गज से बजाए जाने वाले वितत् वाद्य जैसे सारंगी, दिलरुबा, इसराज शामिल हैं ।

प्राचीन भारत में बहुत से तंत्री वाद्य प्रयोग किए जाते थे जिनमें से कुछ ही आजकल प्रचलन में हैं। वास्तव में आजकल प्रचलित अधिकांश तंत्री वाद्यों का विकास इन्हीं प्राचीन वाद्यों के आधार पर हुआ है। सितार, सरोद, सुरबहार, स्वरमंडल, रुद्रवीणा इत्यादि प्राचीन वीणाओं के संशोधित रूप ही हैं ।

तंत्री वाद्यों को दो उपवर्गों में बांटा जा सकता है - प्रहार से बजने वाले तथा गज के घर्षण से बजने वाले तंत्री वाद्य । इन उपवर्गों को पुन: दो श्रेणियों में परिभाषित किया जा सकता है - एक सारिका युक्त तंत्री वाद्य, दूसरे सारिका निर्युक्त तंत्री वाद्य ।

उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित, प्रहार एवं घर्षण से बजने वाले सारिका निर्युक्त तंत्री वाद्यो के अन्तर्गत, तानपुरा, रबाब, सारोद, सारंगी, तथा सारिका युक्त तंत्री वाद्यो के अन्तर्गत रुद्र वीणा, सुरबहार, दिलरुबा, इसराज सितार आदि वाद्यो का संक्षिप्त वर्णन इस शोध प्रपत्र में किया जा रहा है।

१. सारिका निर्युक्त अथवा पर्दे रहित तंत्री वाद्य

क. तम्बूरा या तानपूरा :- सारिका निर्युक्त अथवा पर्दे रहित तंत्री वाद्यों के अन्तर्गत प्रहार द्वारा बजने वाला तंत्री वाद्य तम्बूरा को परिवर्तित काल में तानपूरा कहा जाने लगा। भरत के काल में प्रत्यंग वीणा में उल्लेख मिलता है। घोषा वीणा सुर देने का कार्य करती रही, उसी का विकसित रुप मध्य काल तक आते-सुर बीन, स्वर वीणा तम्बूरा के रूप में प्रचलित रहा । वर्तमान में तानपुरा गायकों के लिए अति आवश्यक वाद्य तो है ही, वादकों के लिए भी महत्वपूर्ण है। तानपूरा पर जब उंगलियों द्वारा तार पर प्रहार करने से मूल नाद की गूँज से जो ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती है, जिन्हे स्वयंभूनाद या सहायक नाद कहते हैं । षडज मूल नाद के आधार पर प ग रे स, पंचम मूल नाद से रें नी ध प, और मध्यम मूल नाद से सं ध प म सहायक स्वरों

की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सात स्वरों की उत्पति मूल नाद एवं सहायक नाद के रूप के रूप में तानपूरे से होती रहती है।

तम्बूरे का विधिवत् नामोल्लेख सर्वप्रथम संगीत पारिजात में हुआ है, किन्तु वर्तमान तम्बूरे का रूप 13वी शताब्दी के बाद का ही है। "अबुल-फज़ल ने 'आईने अकबरी' में तानपूरे को स्वर वीणा कहा है तथा इसका परिचय देते हुए कहा है यह बीन की तरह है। अन्तर केवल यह है कि इसमें परदे नहीं होते।"[5]

ख. रबाब :- रबाब एक अरबी भाषा का शब्द है। डा. प्रकाश महाडिक ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य में 'ग्रोवस शब्द कोष' में वर्णित शब्दों को रबाब के विषय में इस प्रकार वर्णित किया है। "रबाब शब्द सर्वप्रथम दसवीं शताबदी के इबनसिना और अलाफरेबी लेखों मं दिखाई देता है"।[6]

रबाब हिन्दोस्तान में उत्तर मध्य काल में प्रचलित रहा। मुगल काल में यह वाद्य भारत में पहुंचा और भारतीय संगीतकारों ने उसी नाम के वाद्य को परिष्कृत रूप देकर सम्मान के योग्य बनाया तथा कुछ काल तक वह शास्त्रीय संगीत का प्रमुख वाद्य बना रहा।

संस्कृत ग्रंथो मे संगीत पारिजात में सर्वप्रथम इस वाद्य का उल्लेख मिलता है। अष्टछाप कवियों के साहित्य में भी इसका नाम मिलता है।

"-बेनु, वीणा, ताल उघाटित, मुरज, मृंदंग, रबाब (कुम्भदास)

-पिय के आगे बजावति रबाब चूक री, सुघराई में जानी तेरी (कृष्णदास)

-ताल पखावज रबाब झाँझ डफ बेला बेनु रसानी (गोविन्द स्वामी)"[7]

ग. सरोद :- रबाब के अनुकरण पर बना यह वाद्य भारतीय तंत्रकारी में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसको शारदीय वीणा का अपभ्रंश माना जाता है।कुछ विद्वानो ने इसे प्राचीन चित्र वीणा तथा मध्यकालीन रबाब तथा १९वीं शताबदी के सुर सिंगार से मिलता हुआ माना है। वर्तमान में सरोद का जो रूप प्रचलित है वह बहुत कुछ परिष्कृत है और आज भारतीय तंत्री वाद्यों में सर्वश्रेष्ठ तंत्री वाद्यों में इसकी गणना होती है जिसका श्रेय उ० हाफिज़ अली खाँ, उ० अली अकबर खाँ, उ० अमजद अली खाँ को जाता है।

घ. सारंगी :- सारिका रहित गज तत्त तंत्री वाद्यों में सारंगी की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के भिन्न- भिन्न मत है। सारंगी के निर्माता के रुप में अमीर खुसरो, सारंग खाँ, मियां कल्लु खाँ,

हकीम बकरात गौ तथा रावण के नाम उभर कर सामनें आते हैं। सारंगी का प्रथम उल्लेख संगीत शास्त्रों में संगीत राज में प्राप्त होता है।

सारंगी वाद्य का वर्तमान गज वाद्य में महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय संगीत की समस्त विशेषताओं को व्यक्त करने में समर्थ होने के कारण यह गायन की संगति के लिए सर्वश्रेष्ठ वाद्य है। भारतीय संगीत के मूल तत्वों को प्रकट करने के सब लक्षण विद्यमान होने के कारण शास्त्रीय संगीत के गुणियों ने इसे भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपना लिया है।

२. सारिका युक्त अथवा पर्दे सहित तंत्री वाद्य

क. रुद्र वीणा :- शताब्दियों से यह धारणा लोकमान्य है कि भगवान शंकर ने पार्वती जी की शयन मुद्रा से प्रेरणा पा कर इस वीणा का निर्माण किया इसलिए इसे रुद्र वीणा कहते है।महाराजा सवाई प्रताप सिंह देव के अनुसार, "रुद्र वीणा शिव जी को अति प्यारी है।"[7] बी सी देवा के अनुसार, "उत्तर भारत की आधुनिक वीणा (हिन्दु वीणा) को प्राय: रुद्र वीणा कहा जाता है।"[8]

मध्य कालीन ग्रंथों में इस वीणा के विभिन्न स्थानो में अनेक देवताओं का निवास माना है। सप्तक में बारह स्वरों के स्थापित हो जाने से विद्वानों ने ग्यारह रूद्र तथा एक महा रूद्र के दर्शन किए। इसीलिए इसको रूद्र वीणा कहा जाने लगा।

ख. सुरबहार :- सारिका युक्त (पर्दे सहित) एवं प्रहार से बजने वाले वाद्य सुरबहार के आविष्कर्ता के संबंध में कई मतभेद हैं। कच्छपी का ही विकसित रूप सुरबहार है। सुरबहार का नामोल्लेख प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता। वास्तव में सुरबहार की उत्पत्ति सितार के बाद हुई है।

श्री पदबन्दोपाध्याय (सितार मार्ग) में, श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग ने अपनी पुस्तक हमारे संगीत रत्न में उमराव खाँ को इसका आविष्कारक माना है। लेकिन डा. एस परांजये के अनुसार गुलाम मुहम्मद को इसका श्रेय दिया जाता है। एक अन्य मत के अनुसार प्रसिद्ध सितार वादक साहबदाद खाँ ने सितार में सुधार कर इस पर सुरबहार का आविष्कार किया।

ग. दिलरूबा :- घर्षण द्वारा बजने वाला सारिका युक्त तंत्री वाद्य दिलरूबा सितार और सारंगी का मिश्रित रूप है। जो 20वीं शताबदी के प्रारम्भ काल में ही निर्मित ज्ञात होता है। इसराज की भांति दिलरूबा का भी वर्णन प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता है। वास्तव में दिलरूबा,

इसराज के कुछ काल बाद निर्मित हुआ। सिद्धांत रूप से देखा जाए तो इसराज तथा दिलरूबा के रूपाकार, वादन विधि आदि में इतना कम अंतर है कि दोनो का वादन किसी एक का अभ्यास कर लेने मात्र से ही हो सकता है। इस प्रकार एक ही वाद्य के सामान्य अंतर से तीन रूप सामान्य इसराज, मयूरी वीणा(ताऊस) तथा दिलरूबा का प्रचार लगभग गत दो सौ वर्षों से रहा है।

घ. सितार :- प्रत्येक वाद्य का संगीत में अपना-अपना महत्व है परन्तु संगीत के विकास में तन्तु वाद्य का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है और तन्तु वाद्यों के अन्तर्गत सितार का महत्वपूर्ण स्थान है। सितार का प्रचार और प्रसार का क्षेत्र इतना व्यापक है कि धार्मिक स्थानों, विभिन्न समारोहों, रंगमंच, रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्रों आदि में प्रत्येक कार्यक्रम में इसका प्रयोग होता है। तंत्रकारी अंग, गायकी अंग, लोक संगीत या पाश्चात्य संगीत, वृन्दवादन, एकल वादन, यह वाद्य सब प्रकार की शैलियों का समाविष्ट कर अभिव्यक्त करने में सक्षम है। इसी लिए भारतीय संगीत में सारिका युक्त तंत्री वाद्यों में सितार का स्थान आज शीर्षस्थ है।

आज का सर्वाधिक प्रसिद्ध तत्त वाद्य सितार 18वीं शताब्दी से विकसित होता हुआ अपने वर्तमान रूप में पहुंचा है। प्राचीन भारत में बहुत से तंत्री वाद्य प्रचलित थे। प्राचीन काल में जो स्थान वीणा को प्राप्त था, वही स्थान और महत्व सितार वाद्य को इस काल में प्राप्त हुआ।

डा. लालमणि मिश्र के अनुसार सितार का पूर्व नाम त्रितंत्री वीणा था। मध्य काल के मुस्लिम संगीतज्ञों ने संस्कृत शब्द त्रितंत्री के स्थान पर इसका फारसी समानार्थं शब्द 'सेहतार' कहना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि "फारसी में 'सेह' का अर्थ तीन संख्यक होता है अर्तात 'सेहतार' तीन तार वाला वाद्य है"।[9]

इस वाद्य के आविष्कार और विकास के बारे में अनेक मतभेद हैं। एक मत में कहा जाता है कि "13 वीं शताबदी के अमीर खुसरो ने इस वाद्य का आविष्कार पर्शियन वाद्य ऊद्ध के आधार पर किया है। यह वाद्य मुस्लमानों के आगमन के साथ भारत में आया"।[10]

प्राचीन समय में तीन तारों वाला वाद्य 'सेहतार' के क्रमिक विकास में महान संगीतज्ञ तानसेन के वंशज, दो भाईयों इमरत सेन और निहाल सेन ने काफी योगदान दिया। उन्होने सितार के तीन तारों में दो तार और जोड़ दिए जिससे तारों की संख्या पाँच हो गई। सितार में गूंज बढाने के लिए एक तूंबा और जोड़ दिया।

सितार को लोकप्रिय बनाने में दो संगीतज्ञों रज़ा खाँ तथा मसीत खाँ ने बड़ा काम किया। उन्होने इस वाद्य का एकाकी के वाद्य के रूप में न केवल तकनीकी विकास किया बल्कि संगीत रचनाकारों के रूप में सितार को अविस्मरणीय प्रतिष्ठा भी प्रदान की। उन्होने दूसरा तूम्बा हटा दिया और कुछ पर्दों की संख्या बड़ा दी और सितार को तेईस पर्दों का अचल थाट बना कर विकसित किया।

रज़ा खाँ तथा मसीत खाँ के बाद विभिन्न संगीतज्ञों ने उसमे मामूली परिवर्तन किए। "सबसे महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय योगदान साहबदाद खाँ साहिब का है जिन्होने सुरबहार का आविष्कार किया"।[11]

उन्होने सितार की बनावट पर विशेष ध्यान दिया। पर्दों की संख्या कम करके सितार पर चार स्वरों की मींड का प्रदर्शन किया। सितार के क्रमिक विकास में उस्ताद इमदाद खाँ और उस्ताद इनायत खाँ ने तरब की तारें और मुख्य तूम्बे को गोल करके अपने वंश की आविष्कारिक परम्परा आगे बढाया।

वर्तमान समय में सितार देश का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य है। जिसका श्रेय प्रमुख सितार वादकों उस्ताद विलायत खाँ और पंडित रवि शंकर को जाता है। ठुमरी अंग तथा ख्याल गायकी का सम्पूर्ण अंग सितार वादन में प्रारम्भ करने का श्रेय उस्ताद विलायत खाँ साहिब को है। भारत के अन्य प्रसिद्ध सितार वादकों में उस्ताद इमरत खाँ, श्री निखिल बैनर्जी, अब्दुल हलीम जाफर खाँ का नाम भी अग्रगणनीय है ।

उपसंहार

वाद्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । संगीत में वाद्यों का प्रयोग किसी अन्य वाद्य यंत्र की संगति के लिए या स्वतंत्र रूप से भी किया जाता है। अन्य कलाएं, गायन, वादन, नृत्य, नाटक, धार्मिंक कार्यों इन सभी में वाद्य का महत्वपूर्ण स्थान है । संगीत में जितना विस्तार वाद्य संगीत में होता है उतना किसी अन्य कला में नहीं होता। शास्त्रीय संगीत की विवेचना में भी वाद्यों के सहयोग का बहुत महत्व है ।

भारतीय संगीत के इन अदभुत वाद्यों का महत्व केवल इन के वादन मात्र में ही नहीं है । ये वाद्य एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिम्ब भी हैं । इस धरोहर को संभालना हमारा

दायित्व भी है और धर्म भी । इन वाद्यो की परंपरा को संजोये रखने मे ही हमारा अस्तित्व निहित है ।

संदर्भ सूची

वाद्यनाम शास्त्रीय व्युत्पति: वाद्यवादन अंक संगीत पत्रिका, डा. विश्वनाथ शुक्ल, जनवरी, फरवरी 1975, पृष्ठ 21.

मानक हिन्दी कोष, राम चंद्र वर्मा खण्ड 5, पृष्ठ 34

संगीत वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास : निबंध संगीत (संपा. लक्ष्मी नारायण गर्ग), श्री कैलाश पंकज श्रीवास्तव पृष्ठ 154

भारतीय संगीत वाद्य, 'लालमणि मिश्र',पृष्ठ 42

भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य, डा. प्रकाश महाडिक' पृष्ठ 62

वही

भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य, डा. प्रकाश महाडिक, पृष्ठ 72

म्युज़िकल इंस्ट्रूमेंटस आफ इंडिया, श्री बी सी देवा, पृष्ठ 160

भारतीय संगीत वाद्य, डा. लालमणि मिश्र, पृष्ठ 55

संगीत बोध, डा. शरद चंद्र श्रीधर परांजपे द्वितीय संस्करण 1980 पृष्ठ 142

सितार और उसका विकास: संगीत निबंधावली, लेख श्री अरविंद पारिख, 'संगीत निबंधावली', तृतीय आवृति, जनवरी 1977, पृष्ठ 56